कालक्रम के आधार पर लोक नाट्यों में प्रयुक्त पार्श्व संगीत का परिवर्तित स्वरूप

डॉ. शालिनी ठाकुर
असिस्टेंट प्रोफेसर
संगीत एवं ललित कला संकाय
दिल्ली विश्वविद्यालय

लोक नाट्य संगीत में पार्श्व संगीत का स्थान उसकी आत्मा की भांति है जो कि उसमें निहित भावों को जीवन प्रदान करता है। और पार्श्व संगीत में वाद्यवृंद का प्रयोग अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। कालक्रम के अनुसार इसमें परिवर्तन भी हुआ है। वाद्यवृंद का प्रयोग अथवा प्रस्तुतिकरण प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। प्राचीन ग्रंथों में भी इसके प्रमाण प्राप्त होते हैं। प्राचीन काल में इसे कुतुप अथवा तूर्य की संज्ञा दी जाती थी। आज भारतीय संगीत में जितना प्रचार एकल वादन का है उतना सामूहिक वादन का नहीं है। वाद्यवृंद का अधिकतर प्रयोग पार्श्व संगीत के रूप में ही किया जाता है। फिर चाहे वह सुगम संगीत हो या चित्रपट संगीत । विशेषतया जहाँ अभिनय होता है जैसे नाटक, चित्रपट आदि वहाँ पार्श्व में वृंदवादन का अति महत्वपूर्ण योगदान रहता है। उसके बिना किसी भी दृश्य की कल्पना शून्य के समान लगती है। उचित पार्श्व संगीत के अभाव में दृश्य प्रभावरहित ही रहेगा। किसी भी प्रकार का दृश्य हो संगीत ही उसको रचनात्मकता प्रदान करता है अन्यथा संगीत बिना दृश्य प्रभावरहित हो जाएगा।

संगीत मनुष्य के हृदयगत भावों को प्रकट करने का एक सशक्त माध्यम है। उसकी स्वर लहरियों में एक ऐसी शक्ति है जो कि मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करने का समाथ्य रखती है। इसीलिए संगीत को उत्कृष्ट कलाओं की श्रेणी में रखा गया है। उदाहरण स्वरूप किसी भी फिल्म या नाटक के अभिनय के साथ –साथ उसमें प्रयुक्त किए जाने वाले संगीत का भी उतना ही अधिक महत्व होता है। नाटक की सुंदरता को बढ़ाने के लिए संगीत के प्रयोग को विशेष महत्व दिया गया है। और इसी संगीत को पार्श्व संगीत कहा गया। पार्श्व संगीत को समान्य अर्थ में परदे के पीछे का संगीत या अंग्रेजी में बैकग्राउंड म्यूजिक के नाम से संबोधित किया जाता है।

पार्श्व संगीत नाट्य का आधारभूत तत्व रहा है। जिसका सबसे मुख्य उदाहरण कालिदास जी के नाटकों में विशेष रूप से पाया जाता है। उनके द्वारा लिखे गए नाटकों में संगीत आदि से अंत तक चलता रहता है। उनके नाटकों में अभिज्ञानशकंतलम, मालविकाग्निमित्र और विक्रमावर्षीय उनके नाटकों में नेपथ्य शब्द का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। महाकवि कालिदास के बाद दूसरा महत्वपूर्ण ग्रंथ है भरत मुनि का नाट्यशास्त्र । यह ग्रंथ भी नाट्य के संदर्भ में ही लिखा गया है। जिस प्रकार महाकवि कालिदास ने अपने नाटकों में नेपथ्य शब्द का वर्णन किया है ठीक उसी प्रकार भरतमुनि ने नाट्य गृह के निर्माण के बारे में बताया है। उन्होंने तीन प्रकार के नाट्य मंडल बताए हैं – विकृष्ठ, चतुरश्र, त्रियश्र। भरत ने तो नेपथ्य को नाटक का आवश्यक अंग माना है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र ग्रंथ में स्वर, श्रुति , ग्राम, मूर्च्छना, जाति, आतोद्य इत्यादि का विवेचन किया है। भरत के नाट्य प्रयोग में आरंभ से अंत तक गायन, वादन, और नृत्य मुख्य रूप से सम्मिलित थे। नाट्य प्रयोग में संगीत की इसी महत्ता को देखते हुए भरत ने इसे 'नाट्य की शय्या' भी कहा है। इनके नाट्य प्रयोग में गायक वादक की मंडली को कुतप की संज्ञा दी जाती थी। गुप्त काल में भी नाट्य प्रयोग के लिए कुतुप शब्द का प्रयोग किया जाता था। हर्षवर्धन के समय में भी नाट्यशालाएँ थीं। और संगीत प्रदर्शन पृथक–पृथक संगीत गृह भी थे। मुस्लिम काल में वाद्यों के सम्मिलित रूप को नौबत की संज्ञा दी जाती थी। अतः पार्श्व संगीत प्राचीन काल में भी था तथा राजदरबारों में भी पार्श्व संगीत का प्रयोग होता था। पार्श्व संगीत का कार्य वास्तव में किसी स्थिति का पूर्वाभास देना और उसे स्वर सज्जा के माध्यम से अभिव्यक्त करना है जो संगीत व संगीतकार की कल्पनाशक्ति पर निर्भर करता है। पार्श्व संगीत पूर्व घटित एवं भविष्य की घटनाओं को ध्यान में रखकर संयोजित किया जाता है। पार्श्व संगीत के माध्यम से कहानी सूत्र की निरंतरता कायम रखा जाती है। पार्श्व संगीत में मौन का भी उतना ही अधिक महत्व है जितना कि संगीत का इसमें सबसे महत्वपूर्ण बात है कि संगीत संयोजक को इस बात का विशेष ध्यान रखना पड़ता है कि लेखक, निर्देशक का चिंतन विशेष कथा को किस ओर ले जा रहा है। उसी चिंतन को ध्यान में रखकर संगीतकार अपनी कल्पनाशक्ति से ऐसे संगीत का संयोजन करता है जो उस सूत्र एवं उस प्रभाव को उजागर कर कहानी को एक नयी दिशा प्रदान करता है। पार्श्व संगीत का अर्थ प्रायः गीतों से लिया जाता है किन्तु पार्श्व संगीत केवल गीत ही नहीं अपितु पूरे कथानक का अभिन्न अंग होता है। पार्श्व संगीत वास्तव में नाटकों को प्राणवान बनाता है।

संगीत के विकास के संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि सदारंग से ख्याल गायकी में तानों का प्रभाव पड़ा तो पंजाब से टप्पा आया जिसका प्रभाव अन्य क्षेत्रों में भी फैला। ध्रुपद जहाँ चार अंगों स्थायी, अन्तरा, संचारी तथा आभोग प्रस्तुत किया जाता था। मृदंग का बाज तबले में आया तो ठुमरी दादरा में हल्की किन्तु गतिशील नजाकत का समावेश हुआ। इसी प्रकार नाट्य में भाव भंगिमा का स्वरूप सामने आया जबकि स्वर लय के विभाव नहीं बदले। प्रारम्भ में थिएटर की परम्परा को पारसी समाज ने बहुत बढ़ाया। इस थिएटर में

शास्त्रीय गायन की परम्परा भी कायम रही। इनमें कथाएँ पौराणिक होती थी। लोक धुनों का सहारा लेकर इसकी प्रस्तुति होती थी।

पार्श्व संगीत एक ऐसा संगीत है जिसका प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए अटूट लगन व निष्ठा होनी चाहिए। यहाँ तान बाजी की छूट नहीं है। स्वर एक बार न लगने पर बाद में सम्भाल लेने का अवकाश नहीं है। यहाँ कम से कम समय में पूर्णता से गायन प्रस्तुत करना पड़ता है। बंदिश ही इस संगीत की आत्मा है। संगीत संयोजक निर्देशक जिस चिन्तन भाव से उसे मूर्त रूप प्रदान करता है उसे उसी रूप में उठाने अथवा गाने का चातुर्य चाहिए व्यावहारिक अभ्यास पहले है शास्त्र बाद में है। गायक–गायिका को गीत विशेष के साथ एकाकार होना चाहिए। गीत की अपनी अन्तर में अनुभूति से स्वर प्रस्फुटित होते हैं और इस बात का ध्यान रहे कि स्वर और लय का तालमेल बराबर कायम रहे कही भी नीरसता न आए। पार्श्व संगीत के प्रशिक्षण से पूर्व लक्षण गीत की शिक्षा देनी पड़ती है जिससे स्वर लय का ज्ञान होता है और साथ ही रागों का भी। फिल्म या नाटकों में संगीत संयोजन के लिए विभिन्न रागों और लोक धुनों का सहारा लिया जाता है। और राग मिश्रण भी किए जाते हैं। अतः लक्षणगीत सीख लेने से इसके समग्र रूप का अंदाजा मिल जाता है और इस बात का ज्ञान हो जाता है कि कम से कम समय में किसी प्रकार सम्पूर्ण अभिव्यंजना की जाए। जहाँ तक संगीत संयोजन में पार्श्व संगीत का प्रश्न है तो वहाँ एक अरेंजर रहता है जो ग्राम परिवर्तन से संगीत की पूर्ति करता है। ग्राम परिवर्तन का अर्थ भिन्न स्वरों को मूल स्वर मान कर स्केल बदलकर विविधांगी संगीत का संयोजन करना है। जो कि नाटक की कथा और स्थिति विशेष पर निर्भर करता है। इस यांत्रिक उन्नति के युग में इसके लिए विभिन्न साजों का प्रयोग किया जाता है। इससे कथा के मार्मिक स्थल अधिक प्रभावशाली बन जाते हैं। सांगीतिक सौंदर्य का ध्यान अवश्य रखा जाता है। पहले पार्श्व गायन व वादन हेतु जो संगीत तैयार किया जाता था उसका शब्द विन्यास, संगीत योजना और प्रयुक्त होने वाले वाद्य यंत्र अधिकतर शास्त्रीय होते थे। जिनसे भारतीय जनमानस का विशेष और प्रगाढ़ परिचय होने से एक आत्मीयता पूर्ण लगाव होना स्वाभाविक था। समय बदलने के साथ–साथ जैसा कि प्रायः होता ही है कि विचारों, सोच व अभिरूचियों में परिवर्तन आया और पार्श्व संगीत में चुनिन्दा विदेशी वाद्यों का प्रयोग भी मुख्य रूप से होने लगा। धुनें भी कुछ उसी ढंग की तैयार की जाने लगी यह प्रवृत्ति पहले ही क्रांतिकारी परिवर्तन का कारण रही हो किन्तु परिणाम यह हुआ कि भारतीय वाद्य यंत्रों को हटाकर विदेशी वाद्य यंत्रों को बढ़ाया जाने लगा। आज हालात यहाँ तक पहुँच गए कि पार्श्व संगीत देने वाले संगीत निर्देशकों में ऑर्केस्ट्रा में सैकड़ों वादकों का समूह रहता है। संगीत संयोजन का सारा दारोमदार निर्देशक पर रहता है।

वाद्यों का बहुत बड़ा महत्व होता है पार्श्व संगीत में। और वाद्यों का विकास जैसे–जैसे होता गया वैसे ही उनका धार्मिक, सामाजिक, युद्ध आदि के अवसरों पर प्रयोग बढ़ता गया। उदाहरणस्वरूप शहनाई की ध्वनि का मांगलिक कार्यों का सूचक माना गया है। घण्टा, घड़ियाल, शंख आदि की ध्वनि पूजन व हवन आदि ईश्वर उपासना से सम्बंधित कार्य के सूचक कहीं गई और नगाड़ा, तबला, दुंदुभी, पट, तुरही, भेरी आदि वाद्यों की ध्वनियों को युद्ध का सूचक माना गया। किसी नाटक में यदि युद्ध हो रहा है तो ऐसे युद्ध का यदि परोक्ष रूप से संकेत देना हो तो दुंदुभि, भेरी, शंख आदि का वादन किया जाता है। और यदि बालक के जन्म का संकेत देना हो तो बधावा, मंदिलरा आदि का वादन किया जाता है। और यदि वैवाहिक कार्यों का संकेत देना है तो शहनाई, नागस्वरम् आदि का वादन किया जाता है। वाद्यों की ध्वनियाँ विशेष अवसरों के प्रतीक होने के कारण ही दर्शकों के समक्ष उस विशेष अवसर के दृश्य न होते हुए भी संकेत द्वारा तत् संबंधी भावों को जागृत करने में सक्षम होते हैं।

वाद्यों का दूसरा रूप है किसी अन्य वस्तु के सहायक रूप में प्रयुक्त होना, जैसे उदारणार्थ दुष्यंत द्वारा न पहचाने जाने पर शकुन्तला अज्ञातवास के लिए जंगल में जा रही थी। उसके हृदय में वेदना, पश्चाताप, भविष्य की चिंता, भय तथा परिस्थितियों का सामना करने की दृढ़ता आदि से संबंधित मिले–जुले भाव, एक के बाद एक उठ रहे है। उनकी अभिव्यक्ति करने के लिए केवल शारीरिक हाव–भाव ही पर्याप्त नहीं हो सकते। यहाँ शकुन्तला के मनोभावों के अनुरूप किये गए हाव–भाव के साथ–साथ वाद्यों की ध्वनियाँ आंतरिक द्वन्द्व, भय, चिन्ता, व्यग्रता, चंचलता, दृढ़ता आदि भावों को व्यक्त करने में सफल होती है। उदाहरण के लिए यदि राम–रावण का युद्ध सामने है अथवा श्रीराम 14 वर्ष के वनवास की अवधि पूरी करके अयोध्या वापस लौट रहे हैं तो उनके स्वागत की तैयारियाँ हो रही है। अयोध्यावासी हर्षोल्लास से भरे हुए हैं। ऐसे दृश्यों को यदि प्रस्तुत करना हो तो वहाँ पर भी वाद्य विशेष की ध्वनियों का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। ऐसे स्थलों पर वाद्य विशेष अथवा वाद्य समूह मानव के अन्तर्निहित भावों के अभिव्यक्तिकरण को बढ़ावा देते हैं एवं उन्हें उद्दीप्त तथा पुष्ट करते हैं।

भरत कृत नाट्यशास्त्र के अन्तर्गत जहाँ वाद्यों का विधान नाट्यों की सफलता के उद्देश्य से किया गया है। वहाँ निश्चय ही उसके भावात्मक प्रयोगों पर बल दिया गया है। तात्विक दृष्टि से प्रत्येक कला के दो पहलू हैं जिन्हें भावपक्ष तथा कलापक्ष कहा जाता है। जब किसी कला का प्रयोजन अन्तर्निहित भावों की अभिव्यक्ति के लिए होता है तब उसे भावपक्ष और जब उस कला विशेष के प्राविधिक चमत्कार अथवा उसके नियम आदि का उद्‌घाटन ही प्रयोजन हो तब उसका कलापक्ष उभर कर आता है। वर्तमान समय में संगीत में स्पष्ट रूप से दो प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती है जो उसमें कला पक्ष तथा भाव पक्ष की परिपोषक कही जा सकती है। जिस समय कलाकार अपना स्वतंत्र कार्यक्रम प्रस्तुत करता है उस समय उसके वादन का किसी विशेष कथानक अथवा घटना से संबंध नहीं होता। अतएव उसके लिए प्राविधिक ज्ञान की उपयोगिता का दिग्दर्शन ही श्रेष्ठ होता है। जिसके द्वारा वह अपनी तैयारी फिर लयकारी आदि से श्रोताओं को

आश्चर्यचकित करता है। उसके बाद यदि कलाकार स्वयं भावुक है तो वह अपने स्वरों को भावपक्ष की ओर मोड़ता है अन्यथा उसके प्रदर्शन की समाप्ति कलापक्ष तक ही रह जाती है। किन्तु जब नाट्य का प्रयोग गीति नाट्य, नृत्य नाटिका, बैले नाटक अथवा कुम्भ से सम्बधित होता है तब उसके कथानक के पृष्ठभूमि का ध्यान रखते हुए उसमें भावपक्ष प्रबल हो जाता है।

भावाभिव्यक्ति के लिए वाद्यों का प्रयोग परम्परागत तो होता ही है किन्तु यदि कलाकार चाहे तो ध्वनि की तारतम्यता, तीव्रता आदि द्वारा वे अपने ढंग से प्रयोग भी कर सकता है। नाद की उक्त तीनों विशेषताओं के साथ–साथ लय तथा लयकारी द्वारा भी भावों को एक नया मोड़ प्रदान किया जा सकता है। तारता, तीव्रता तथा लय आदि के विशेष प्रयोगों द्वारा भैरवी, तोड़ी जैसे करुण रागों में वीर भाव तथा देस, बागेश्री जैसे दयनीयता भावयुक्त रागों में श्रृंगारिक एवं ओजपूर्ण भावों की परियोजना की जा सकती है।

पार्श्व संगीत देने वाले को उस्ताद कहा जाता है एवं इनमें साजिन्दों व गायक–गायिकाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। गायकों की संगत के लिए एक संगीत कुतुप (ऑर्केस्ट्रा) होता है जिनमें हारमोनियम के साथ सारंगी, नगाड़ा, ढोलक और मंजीरों का उपयोग किया जाता है। अभिनेता गीत के बोल बंदिश के साथ उठाते हैं उसे ऑर्केस्ट्रा के गायक और वाद्यवृंद बारिकी एवं मींड व कण के साथ गाकर माधुर्य प्रस्तुत करते हैं। वादक उन मींडों और मुर्कियों को अपने–अपने वाद्यों से निकालते हैं। गीत के भावों को अभिनेता नृत्य एवं भाव मुद्राओं द्वारा मूर्त रूप प्रदान करते हैं। अभिनेताओं को बीच–बीच में विश्राम देने के लिए टेरिये तथा वादक, राग एवं ताल का विस्तार करक उन्हें सहारा देते रहते हैं। टेरियों का उपयोग पात्र की थकान मिटाने एवं छंद की पंक्तियाँ दोहराने के रूप में किया जाता है। टेर की आवृत्ति करने वाले टेरिये कहलाते हैं। टेरियों की व्यवस्था अलग से नहीं होती। पार्श्व संगीत देने वाले जिन कलाकारों का कार्य मंच पर आगे–पीछे होता है, वे टेरियो का कार्य करते हैं।

A large group of musicians performing on stringed, woodwind, brass and percussion instruments- The word orchestraonce meant the semicircular area of a classical Greek theatre between stage and audience, in which the chorus danced-

नाटकों में पार्श्व संगीत देने के लिए लोक प्रचलित रागों एवं धुनों का प्रयोग अकसर किया जाता है। धुनों एवं रागों का चुनाव साधारण तथा उत्तरांग प्रधान होने के दो मुख्य कारण दृष्टिगोचर होते हैं। पहला यह है कि ख्यालों का प्रारम्भ द्वितीय प्रहर के लगभग होता है। दूसरा यह आवाज को दूर तक पहुँचाने के लिए उपयोगी है। उदाहरण के लिए चिड़ावी, ख्यालों की लोक धुनें प्रायः भैरवी, सोरठ, देस, वृंदावनी सारंग, कलिंगड़ा, आसावरी, झिंझोटी, पहाड़ी, जौनपुरी, काफी, बरवा, बिहाग, पीलू, मांड, कल्याण, खमाज, धनाश्री, परज, भूपाली, सोहनी, आदि रागों पर आधारित है।

हर लोकनाट्य विद्या की अपनी–अपनी गायन व नर्तन शैलियाँ होती है। किसी में संगीत की तथा किसी में काव्य की प्रधानता रहती है किन्तु राजस्थान के चिड़ावी ख्यालों में काव्य और गायन दोनों की प्रधानता रहती है। चिड़ावी ख्यालों के प्रमुख कलाकारों में सुखताल, नानूलाल आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन्होंने लगभग 190 वर्ष पूर्व चिड़ावी ख्यालों का आविष्कार किया। चिड़ावी निवासी होने के कारण इन्होंने अपने द्वारा प्रदर्शित ख्यालों को चिड़ावी ख्यालों का नाम दिया। श्री नानूलाल राणा केवल एक रससिद्ध कवि ही नहीं हैं अपितु एक सुकण्ठ गायक भी थे।

नाटक के किसी भी दृश्य को प्रभावकारी बनाने में पार्श्व संगीत का बहुत बड़ा योगदान।परन्तु इसके लिए कलाकार का अनुभवी होना अति आवश्यक है। जिन दृश्यों में कम से कम शब्दों का प्रयोग किया जाता है वहाँ पर पार्श्व संगीत की भाषा सारी बात को स्पष्ट कर देती है। पार्श्व संगीत के द्वारा ही नाटकों को जीवंत और प्रभावशाली बनाया जा सकता है। क्योंकि नाटक और संगीत का आपस में बहुत गहरा संबंध है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पाश्चात्य स्वर लिपि पद्धति एवं भारतीय संगीत – स्वतंत्र शर्मा

2. भारतीय संगीत का इतिहास, डॉ. शरच्चन्द्र परांजपे

3. The golden encyclopedia of Music & Narmath Lloyd

4. लोक नाट्यों में संगीत – डॉ. श्रीमती ज्ञानवती बैद मेहता

5. हिन्दी फिल्में एक ऐतिहासिक अध्ययन, चन्द्रभूषण